अध्याय - 5

प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद : महादेवी वर्मा एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ

अध्याय - 5

धर्म, दर्शन एवं साधना संबंधी रहस्यवाद : महादेवी वर्मा एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ।

धर्म का प्राचीन अर्थ धारण करना है, अतः मनुष्य जिसको धारण करता है वही उसका धर्म बन जाता है। धर्म साधारणतः दो रूपों में हुआ करता हैं, एक मनुष्यकृत जैसे - हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई और दूसरा प्रकृतिगत जैसे - भूख, प्यास, नींद आदि। अर्थात धर्म वह वृति है, जो किसी वस्तु या व्यक्ति में हमेशा विद्यमान रहे, जिससे उसे एक विशेष पहचान मिले। किन्तु इसमें भी सारी चीजें स्पष्ट नहीं हो पाती, बहुत कुछ रहस्य रह जाता है तब रहस्य दर्शन का रूप ले लेता है।

'दर्शन' शब्द की उत्पत्ति 'दृश' (देखना) धातु से हुई है। यह अवलोकन बाहरी और आतंरिक हो सकता है अथवा सत्यों का निरीक्षण, अन्वेषण व तार्किक अनुसंधान हो सकता है। प्रायः दर्शन का अर्थ आलोचनात्मक अभिव्यक्ति, तार्किक मापदंड होता है। दर्शन शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फिलॉस्फी' (philosophy) शब्द का हिंदी रूपांतरण है। 'फिलॉस्फी' शब्द की उत्पति यूनानी भाषा के दो शब्दों 'फिलॉस' (philos) तथा 'सोफिया' (Sophia) से हुई हैं। 'फिलॉस' का अर्थ है प्रेम तथा अनुराग और 'सोफिया' का अर्थ है ज्ञान, प्रज्ञा तथा विवेक। 'फलॉस्फी' का शाब्दिक अर्थ है बुद्धि प्रेम, ज्ञान के प्रति अनुराग अथवा ज्ञान का प्रेम है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'दर्शन' शब्द 'दृशिर् प्रेक्षणे' धातु से ल्युट प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। अर्थात दर्शन शब्द का अर्थ दृष्टि या देखना होता है, 'जिसके द्वारा देखा जाय' या 'जिसमें देखा जाय' होगा।

पाणिनीय ने धात्वर्थ में 'प्रेक्षण' शब्द का प्रयोग किया है, ताकि दर्शन शब्द के शब्दार्थ 'देखना' को सामान्य अर्थों में न लिया जाय।

भारतीय विचारकों के अनुसार दर्शन की परिभाषाएँ –

1. **राममूर्ति त्रिपाठी** - "दर्शन - जीवन दर्शन है जो त्रिकोण है, उसके शीर्ष पर गंतव्य है और उस तक पहुँचाने वाला कोण पर आचार तथा दूसरे कोण पर उसके प्रति आस्था के दृढ़ीकरण के लिए अपनाया गया विचार है। दर्शनार्थ होने से विचार भी उपचारतः 'दर्शन' कहा जाता है ।"[1]

2. **डॉ. शोभा निगम** - "भारतीय दर्शन का तात्पर्य केवल हिन्दू धर्म के दर्शन, वैदिक दर्शन अथवा आर्यों के दर्शन से नहीं है। भारतीय दर्शन का तात्पर्य सम्पूर्ण भारतवर्ष के किसी भी धर्म संप्रदाय एवं जाति द्वारा चिंतन मनन किये गए दर्शन से है।"[2]

3. **महेश शर्मा** - "दर्शन वे शास्त्र हैं जिनमें प्रकृति, आत्मा, परमात्मा और जीवन के अंतिम लक्ष्य का विवेचन है, जिनमें मोक्ष प्राप्त करना तथा ईश्वर में लीन हो जाना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य बताया गया है।"[3]

पाश्चात्य विचारकों के अनुसार दर्शन की परिभाषाएँ –

1. **ब्राइटमैन** - "दर्शन अनुभव के विषय में निष्कर्षों का समूह न होकर मूल रूप से अनुभव के प्रति एक दृष्टिकोण या पद्धति है।"[4]

2. **जॉन डीवी** - "जब कभी दर्शन पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया तो सदा ही यह मान लिया गया कि वह एक ऐसे ज्ञान की प्राप्ति का द्योतक है जो की जीवन के व्यवहार को प्रभावित करेगा।"[5]

3. **इयुकास्से** - "Were I limited one line for my answer to it, I should say that philosophy is general theory of criticism."[6]

अर्थात भाव और बुद्धिगत प्रवृतियों को जानने समझने के लिए मानव ने कला और दर्शन चेतना की संरचना की। मनुष्य का दर्शन उसके तथा सृष्टि के रहस्यमय जीवन का बौद्धिक विवेचन है और कविता मानव जीवन का समग्र चित्रण है जो दर्शन द्वारा व्यापक होती है। भावों की अभिव्यक्ति करना मात्र कविता नहीं अपितु उसमें जीवन सत्य का उद्घाटन भी होना चाहिए। यह दर्शन का कार्य है। दर्शन जीवनगत रहस्यों को अनावृत कर सत्य को खोल देता है। अतः स्पष्ट है कि, कवि का दर्शन कविता में स्पष्ट हो जाता है। महादेवी और रवीन्द्रनाथ की कविताएँ जीवन की समग्रता से ओत - प्रोत हैं। अतः उनकी रहस्यवादी कविताओं का दार्शनिक पक्ष अनुसंधान की दृष्टि से समीचीन है और उनका विवेचन, विश्लेषण मेरे शोध का महत्त्वपूर्ण अंग है।

महादेवी और रवीन्द्रनाथ के काव्य में धर्म, दर्शन और साधना सम्बन्धी रहस्यवादी कविताएँ अद्वैतात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है, मूल रूप से सभी एक है। दोनों की रहस्यवादी कविताएँ, कवि दर्शन की उच्च भूमि पर स्थापित है। 19वी शताब्दी में बंगाल के नवजागरण के साथ तत्कालीन भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और पारिवारिक परिवेश की पृष्ठभूमि का बहुत बड़ा योगदान रवीन्द्रनाथ और महादेवी के व्यक्तित्व और उनके आध्यात्मिक जीवन दर्शन पर रहा। महादेवी के जीवन दर्शन और काव्य पर मूल रूप से वेदांत के अद्वैतवाद, बौद्ध दर्शन का दुखवाद (महाकरूणा) और माँ के साहचर्य में मध्यकालीन भक्त कवियों से परिचय और प्रभाव उनके सम्पूर्ण जीवन व साहित्यिक दर्शन पर रहा। दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ को उपनिषद के अद्वैतभाव, आनन्दवाद के साथ वैष्णवों के लीलावाद और बाउलों एवं संतों की सार्वजनीन सहज साधना ने विशेष रूप से आकर्षित किया ।

महादेवी और रवीन्द्रनाथ के समग्र दर्शन में मध्यकालीन भक्त कवियों के साथ उपनिषद के अद्वैतभाव पर विवेकानंद के द्वारा दी गई वेदांत की नयी व्याख्या, जिसमें मानवीय प्रेम, सेवा, त्याग के साथ कर्मवाद की प्रधानता का प्रभाव रहा है। इन्हीं मानवीय धर्मों को महादेवी और रवीन्द्रनाथ ने अपनी साधना पथ पर ताउम्र ओढ़े रखा। रवीन्द्रनाथ मानव धर्म की चर्चा करते हुए कहते हैं कि - "ए जगत स्वार्थपर हहेबार जो नहे। परार्थपरताइ ए जगतेर धर्म। एइ निमिउइ मानुषेर सर्वोत्कृष्ट धर्म परेर जनों आत्मोत्सर्ग करा।"[7] अर्थात यह जगत स्वार्थपरक होने के लिए नहीं है। जगत का धर्म परमार्थ है और इस नियम से मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट धर्म दूसरों के लिए आत्मोत्सर्ग करना है।

<u>महादेवी के रहस्यवाद पर धर्म, दर्शन एवं साधना संबंधी पृष्ठभूमि :</u>

महादेवी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व अर्थात उनके सम्पूर्ण जीवन दर्शन में बौद्ध दर्शन व अद्वैत दर्शन दोनों का गहरा प्रभाव रहा हैं। बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग के कारण महादेवी भिक्षुणी बनना चाहती थी। इसी क्रम में वे बौद्ध महास्थविर से मिली परन्तु महास्थविर ने काष्ठपट्टिका की ओट में इनसे बात की इन्हें यह बहुत ही अपमानकर लगा और महादेवी ने इसकी प्रतिक्रिया में भिक्षुणी बनने का विचार ही त्याग दिया। लेकिन बौद्ध दर्शन के दुखवाद का प्रभाव उनपर बना रहा। महादेवी का काव्य - संसार इसी करुणा की धारा में सिंचित है। उनके साहित्य में करुणा की प्रधानता और पीड़ा व वेदना - प्रियता की प्रवृति को बौद्ध धर्म का ही प्रभाव माना जाता है। महादेवी स्वयं बौद्ध धर्म की विशेषता, अपने निबंध 'करुणा का संदेश वाहक' में इस प्रकार बताती हैं - "बुद्ध का निर्वाण भी जीवन के उपरांत कोई स्थिति न होकर जीवन की ही ऐसी स्थिति है, जिसमें तृष्णा के क्षय से दुख का क्षय हो गया है। पर यह दुख का क्षय केवल अपने लिए नहीं है, इसी से बोधिचर्यावतार में मिलता है - "सर्वस्व त्याग में निर्वाण है', मेरा चित्त उस स्थिति के लिए प्रस्तुत है, अतः

सब कुछ समर्पण कर देना उचित है। इसे सब को दे देना उचित है।''[8] सभी के दुख में दुख देखने वाली महादेवी को बौद्ध धर्म आकर्षित करता रहा हैं। बौद्ध धर्म की अवधारणा के मूल में करुणा से अधिक मनुष्यत्व का स्थान है। अतः मानव - प्रेमी महादेवी प्रिय प्राप्ति के साधना पथ पर आजीवन समर्पण रूपी धर्म पर दृढ रही हैं।

शंकराचार्य अद्वैतवाद के प्रमुख प्रतिष्ठाता माने जाते हैं। अद्वैत (अ+द्वैत) शब्द का अर्थ है, जो दो नहीं मानता। अर्थात् आत्मा और परमात्मा एक है। ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ही ब्रह्म है, जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है। विज्ञान के अनुसार भी समस्त विश्व में व्याप्त द्रव्य एवं शक्ति की मूलभूत एकता एक है। अद्वैतवादियों के अनुसार व्यक्ति की साधना का चरम लक्ष्य इसी आनन्दमयी मुक्ति की स्थायी उपलब्धि है। भारतीय दर्शन में कहा गया है 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) या 'तत्त्वमसि' (तुम वही ब्रह्म हो) अर्थात् समस्त विश्व में वह परमतत्व ही समाहित है। महादेवी ने 'रहस्यवाद' नामक निबंध में स्पष्ट स्वीकार किया है कि, ''रहस्यवाद में जो प्रवृत्तियाँ मिलती है, उन सबके मूल रूप हमें उपनिषदों की विचारधारा में मिल जाते हैं। रहस्यभावना के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असंभव हो जाती है और दूसे के बिना मिलन की इच्छा आधार खो देती है।''[9] अर्थात् महादेवी के दर्शन में जहाँ अद्वैत की स्थिति है वहीं द्वैत के महत्व को भी स्वीकार किया गया है। महादेवी जब स्वयं कहती हैं –

''बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !

नींद भी मेरे अचल निस्पंदन कण कण में,

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी;

तार भी आघात की झंकार की गति भी,

पात्र भी मधु भी मधुप भी मधर विस्मृति भी;

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !''[10]

इन पंक्तियों में महादेवी अलौकिक प्रियतम को विभिन्न रूपों में देखती है अर्थात् एक ही सत्ता का विभिन्न रूपों में विलय हो रहा है। भारतीय दर्शन में सर्वात्मवाद की स्थापना ही यही है कि, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, मिट्टी-पत्थर, सूर्य-चंद्र सभी में आत्मा का अस्तित्व है। वस्तुतः मनुष्य की चेतना का विश्व की सभी वस्तुओं पर आरोप है। इस व्याख्या के आधार पर महादेवी में सर्वात्मवाद की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं ।

महादेवी का समग्र परिवेश उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि को परिपक्वता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता रहा हैं। महादेवी स्वयं 'मैं और मेरा परिवेश' में स्वीकार करती हैं कि, ''दर्शन का शब्दार्थ तो वास्तव में वह बौद्धिक प्रक्रिया है जो जीवन के किसी सत्य की खोज करता है और एक दिशा देता है। .....लेकिन जीवन में दर्शन इस प्रकार नहीं उतरता। जीवन में दर्शन अनुभूति की धरती पर उत्पन्न होता है और बुद्धि की छाया में विकास करता है।.....जब मेरे जीवन-दर्शन की बात आती है तो मैं केवल उस परिवेश को बता सकती हूँ कि जिसमें जीवन-दर्शन बना।''[11]

जिस युग में महादेवी का जन्म हुआ बीसवीं सदी का पहला दशक था। धर्म और दर्शन के क्षेत्र में रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गाँधी, रवीन्द्र तथा आर्य समाज, ब्रह्म समाज थे, सब विकास कर चुके थे। महादेवी के पिता और पितामह प्रबुद्ध और संस्कार संपन्न व्यक्ति थे। इनके घर का वातावरण राष्ट्रीय चेतना से संपृक्त था। महादेवी स्वयं तत्कालीन राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में

सक्रिय थी। समय-समय पर गाँधी के सहचर्य भी प्राप्त करती रही हैं। उन्होंने स्वयं कहा हैं - ''मुझको राष्ट्रीय जागरण में बापू का साथ मिल गया। बापू के साथ से मुझे जीवन के तत्व ऐसे मिले कि जिन्होंने बड़ा व्यापक क्षितिज दिया। .... यह सत्य है कि अहिंसा का ज्ञान मुझको उनसे मिला।''[12] इस परिवेश का महादेवी के दर्शन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जहाँ महादेवी पर भारतीय दर्शन के अद्वैतवाद, द्वैतवाद और सर्वात्मवाद का प्रभाव रहा वहीं गाँधी, रवीन्द्र जैसे मनीषियों का अहिंसा और मानवतावाद से भी प्रभावित रहीं। उनके अद्वैतवाद पर युग विशेष के प्रभाव के कारण नवजागरण की नव्य-वेदांत वाली विचारधारा से भी जुड़ती है।

<u>महादेवी की रहस्यवादी कविताओं में धर्म, दर्शन और साधना संबंधी प्रभाव :</u>

छायावाद नवजागरण की सांस्कृति और दार्शनिक परिणति है। अर्थात् इस काव्यधारा में एक स्पष्ट विचारधारा है, जो नवजागरण के आलोक में निर्मित हुआ है। 19वीं शताब्दी में बंगाल के नवजागरण के आलोक में स्वामी रामकृष्ण के प्रभाव में विवेकानन्द ने उपनिषदों या वेदांत की नई व्याख्या प्रस्तुत की जिसमें कर्मवाद की प्रमुखता रही। नवजागरण के अरूणोदय का दार्शनिक रूप विवेकानंद और सर्जनात्मक आभा रवीन्द्रनाथ में लक्षित हुआ है, वही रवीन्द्रनाथ से महादेवी प्रभावित रही हैं।

महादेवी आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद की कवयित्री रही हैं। वे आत्मा-परमात्मा की सूक्ष्म सत्ता में पूर्ण विश्वास करती हैं। रहस्यवाद का मूल रूप हमें वैदिक काल से ही दिखाई पड़ता है। जहाँ वैदिक रहस्यवाद अपने क्षेत्र विस्तार में चिंतन-मनन के साथ तर्क-बुद्धि को ग्रहण करता है, वहीं आधुनिक रहस्यवाद में भावना और अनुभूति का प्रभाव अधिक है। परन्तु दोनों का आधार

तत्त्व उस परम सत्ता की उपलब्धि ही है। महादेवी 'रहस्यवाद' नामक निबंध में कहती है, ''इस धरातल पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष का संबंध बनाए रखने के लिए बुद्धि और हृदय की असाधारण एकता चाहिए। .....अखंड चेतन से तादात्म्य का रूप केवल बौद्धिक भी हो सकता है, पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का श्रेय ही हृदय का प्रेय हो जाता है।''[13]

अतः महादेवी की रहस्यावादी कविताएँ बहुत कुछ उनकी दार्शनिक मानयताओं पर आधारित है। उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को केवल बौद्धिकता के स्तर पर ग्रहण नहीं किया बल्कि उसके साथ भावात्मक संबंध स्थापित करते हुए अनुभूति का अंग बनाया। मूलतः महादेवी की दार्शनिक विचार-धारा बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त दर्शन से प्रभावित है।

अद्वैतवाद भारतीय दर्शन का सबसे मान्य सिद्धांत है। इस दर्शन के अनुसार, संसार में ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव और ब्रह्म अलग नहीं हैं। जीव केवल अज्ञान (माया) के कारण ही ब्रह्म को नहीं जान पाता जबकि ब्रह्म तो उसके ही अंदर विराजमान है। दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। सभी रहस्यवादी साधक सृष्टि के मूल में उस परम सत्ता की उपस्थिति को स्वीकारते हैं। यह सृष्टि 'ब्रह्म' या 'परमेश्वर' का ही व्यक्त रूप है। वह ब्रह्म ही सृष्टि के विभिन्न रूप में तथा सृष्टि के विभिन्न पदार्थ ब्रह्म के रूप में परिणत होते रहते हैं। अतः वही परमसत्ता समस्त संसार में अंतिम सत्य है। महादेवी ने अपनी रहस्यवादी कविताओं में ब्रह्म के इस स्वरूप के प्रति पूर्ण आस्था प्रकट की है। रहस्यवादी साधक की यह प्रमुख विशेषता होती है कि वह अव्यक्त सत्ता के प्रति पूर्ण समर्पित होता है और उसकी मौजूदगी को सृष्टि के कण-कण में अनुभव करता है। भारतीय दर्शन में परमात्मा के अस्तित्व के विषय में यह तर्क दिया जाता है कि जब सृष्टि है तो उसका नियंता भी है। सृष्टि के उस नियंता पर अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त करते हुए महादेवी ने काव्यमय शैली में कहा हैं –

''तम असीम तेरा प्रकाश चिर,

खेलेंगे नव खेल निरंतर;

तम के अणु-अणु में विद्युत सा-

अमिट चित्र अंकित करता चल।''[14]

महादेवी इस असीम तम रूपी सृष्टि में प्रकाश रूपी परमतत्व की मौजूदगी को स्वीकारती हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार, 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ; परमत्व इस सृष्टि का नियंता है और वह स्वयं चराचर में व्याप्त है। महादेवी की रहस्यवादी कविताओं में, उनके दर्शन पर इस सिद्धांत की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ता है।

उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप पर चर्चा करते हुए उसके दो रूप पर चर्चा की गई है – (1) व्यक्त रूप (सगुण) (2) अव्यक्त रूप (निर्गुण)। महादेवी की विचार-धारा मूलतः अद्वैतवाद से प्रभावित है इसलिए उनका प्रियतम अव्यक्त रूप में ही प्रस्तुत होता है। कवयित्री अपने को एक साधिका के रूप में प्रस्तुत करती है। वह अद्वैत में द्वैत का दर्शन करती हैं। महादेवी का साध्य पृथक हैं और साधिका पृथक हैं फिर भी दोनों एक हैं। अद्वैतवाद में ज्ञाता और गेय अथवा प्रेमी और प्रिय दोनों में अभेद संबंध होता है। इसलिए कवयित्री अपने को उस प्रिय की वीणा और रागिनी दोनों कहती है। अपने तात्विक दर्शन का परिचय देते हुए महादेवी कहती हैं –

(i) **''बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।**

नींद थी मेरी अचल निस्पंदन कण-कण में,

प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पंदन में;

प्रलय में मेरा पता पदचिन्ह जीवन में,

शाप हूँ जो बन गया वरदान बंधन में।''[15]

(ii) **''चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,**

मधुर राग तू मैं स्वर-संगम,

तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया-छाया में रहस्यमय!

प्रेयसि प्रियतम का अभिनय-क्या?''[16]

स्पष्ट रूप से महादेवी की इन रहस्यवादी कविताओं में सर्वात्मवाद की झलक दिखाई देती हैं। महादेवी के गीतों में उनकी आत्मा का प्रतिबिम्ब सर्वत्र दिखाई देता हैं। उनके काव्य में उनका अलौकिक प्रियतम ही सर्वत्र नाना रूपों में प्रतीत होता हैं। सर्वात्मवाद की सार्वभौमिक स्थापना यह है कि पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, मिट्टी-पत्थर, सूर्य-चंद्र सभी में आत्मा का अस्तित्व हैं। वस्तुतः मनुष्य की चेतना का विश्व की सभी वस्तुओं पर आरोप है । अर्थात् सर्वात्मवाद आत्मा और पारलौकिकता में विश्वास रखने वाला जीवन दर्शन है। छायावादी काव्य में प्रकृति के मानवीकरण और उसके आध्यात्मिक दर्शन की एक बड़ी प्रेरणा सर्वात्मवाद है। जिसका स्पष्ट प्रभाव महादेवी की रहस्यवादी कविताओं में परिलक्षित होता है।

महादेवी अपने को एक साधिका के रूप में प्रस्तुत करती है। वह अद्वैत में द्वैत का दर्शन करती हैं। छान्दोग्य उपनिषद के 'एकोहं बहुस्यामः' दर्शन की स्पष्ट झलक महादेवी की रहस्यवादी कविताओं पर दिखाई पड़ती है। वे स्वयं अपेन अज्ञात प्रियतम को प्रकृति के कण-कण में देखती है तथा उस प्रियतम के

साथ एकत्व को अनुभव करते हुए भी उनसे विरह की व्याकुलता बनी रहती है। महादेवी अपने निबंध 'रहस्यवाद' में कहती हैं कि, ''रहस्यवाद में जो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, उन सबके मूल रूप हमें उपनिषदों की विचारधारा में मिल जाते हैं। रहस्यभावना के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असंभव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा आधार खो देती है।''[17]

महादेवी की आस्था एक ऐसी परम सत्ता के प्रति है जो सृष्टि के मूल में स्थित है। उनका प्रियतम भी वही परम सत्ता है जो केवल लीला करने के लिए अपने से अलग सृष्टि के कण-कण तक अपना विस्तार करता है। अपने से अलग-अलग रूप में समाहित होकर भी उस अव्यक्त सत्ता की अखण्डता अक्षुण्ण बनी रहती है। यह समस्त संसार उसी परम सत्ता के हाथ का लीला-कमल है। सब प्राणी, पदार्थ, संपूर्ण प्रकृति उसी का प्राकृत आत्म विस्तार है। महादेवी स्वयं उसी सत्ता के स्वरूप को अपने अंदर पाती है। मैं और तुम का भेद होते हुए भी अपने अव्यक्त, अज्ञात प्रियतम से अभिन्नता को भी स्वीकारती है – रश्मि काव्य संग्रह के गीत संख्या बीस में कवयित्री ने इसी दर्शन को व्यक्त किया है –

''मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं

जैसे रश्मि प्रकाश;

मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों

धन से तड़ित्-विलास।''[18]

महादेवी के इस विचारधारा के मूल में अद्वैतवादी विचारधारा का ही समावेश है जिसके अनुसार यह विश्व परमात्मा का बिम्ब है और जीव का उससे अलग कोई अस्तित्व नहीं है।

आध्यात्मवादी साधक सृष्टि के मूल में अदृश्य, अगोचर, सर्वत्र व्याप्त एवं शाश्वत सत्ता की उपस्थिति को स्वीकारते हैं। भारतीय उपनिषद के अनुसार यही 'ब्रह्म' या 'परमेश्वर' है। यह सृष्टि उसी ब्रह्म का व्यक्त रूप है और वह समस्त संसार में अन्तिम रूप सत्य है। परन्तु जीवन और जगत के वास्तविक स्वरूप को न पहचान पाने के कारण ही जीव संसार के आकर्षक जाल (माया) में उलझता जाता है। इसी कारण भारतीय दर्शन में माया को अविद्या या अज्ञान कहा गया है। महादेवी ने अद्वैतवादियों की भाँति माया की तीव्र निंदा नहीं की है परन्तु उन्होंने भी माया के संबंध में मनोवैज्ञानिक और तर्क संगत विचार रखा है जिस कारण वह और अधिक बोधगम्य हो उठा है। उदाहरण – नीरजा –

''टूट गया वह दर्पण निर्मम !

उसमें हँस दी मेरी छाया,

मुझसे रो दी ममता माया,

अश्रु – ह्रास ने विश्व सजाया,

रहे खेलते आँख मिचौनी

प्रिय ! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम' !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !''[19]

जिस प्रकार दर्पण में एक ही व्यक्ति का दो रूप दिखाई पड़ता है लेकिन उसके टूट जाने के उपरांत पुनः एकता का बोध हो जाता है। गणपतिचंद गुप्त के अनुसार, ''बौद्ध मत के अनुसार चेतना किसी भी क्षण पूर्ववत् नहीं रहती, वह सदा गतिशील एवं प्रवाहमान रहती है, इसलिए इसका स्वरूप प्रत्येक क्षण परिवर्तित होता रहता है। एक जन्म से दूसरा जन्म धारण करने वाली सत्ता भी

यही चेतना और दूसरे जन्म की चेतना में वही सम्बन्ध है जो दूध और दही में है; दही दूध से सर्वथा पृथक भी नहीं होता पर पूर्णतः अभिन्न भी नहीं होता।''[20]

महादेवी का जीवन दर्शन भी जगत् की अस्थिरता, क्षण-भंगुरता, परिवर्तनशीलात को स्वीकारता है। जगत् की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। अतः संयोग के साथ वियोग और सुख के बाद दुःख लगा रहता है। वे कहती हैं -

''मैं नीर भरी दुःख की बदली,

X X X

विस्तृत नभ का कोई कोना,

मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही

उमड़ी कल थी मिट आज चली।''[21]

महादेवी जानती हैं कि जीवन दुःख की बदली हैं और उनका एक ही धर्म है। वे मिटकर ही इस जगत् का कल्याण करना चाहती है। यह मानव धर्म ही उनके जीवन की सार्थकता है। इसलिए ही वह नभमंडल में उमड़ी थी और आज मिटकर चल दी। एक प्रकार से त्यागमय और मानवकल्याण रूपी धर्म का दर्शन उनके इस रहस्यमयी कविता में दिखलाई पड़ता है।

महादेवी का जीवन-दर्शन भगवान बुद्ध की अनंत करूणा की भावना से प्रभावित है। विदित है कि बौद्ध दर्शन के प्रभाव ने ही उनके जीवन में दुःखवादी दृष्टिकोण को गहराई से प्रतिष्ठित कर दिया। गंगाप्रसाद पाण्डेय के अनुसार, ''देवी जी का जीवन-दर्शन अपने निरपेक्ष स्वरूप में भगवान बुद्ध की अनंत करूणा की

भावना से प्रस्फुटित होता है। बुद्ध की करूणा में प्राणी मात्र की आत्मा का क्रन्दन-स्वर है। देवीजी ने इसको अपनी सीमित परिधि में अवतरित करके काव्यगत वेदना का असीमित स्वरूप दिया है। वास्तव में देवी जी का यह दर्शन जीवन की इस रूप में व्याख्या की अनंत सत्ता का स्पर्श नहीं करता है, किन्तु उसमें काव्य की चेतना ने आकर कोमल माधुर्य की सरसता को जितनी गहराई तक सींचा है, वह इतनी सुलभता से कहीं प्राप्त नहीं की जा सकती है।''[22] अर्थात् महादेवी वर्मा के ऊपर बौद्ध-दर्शन की करूणा का प्रभाव दिखायी पड़ता है। 'दीपशिखा' साधना करने वाली आत्मा का प्रतीक है। वह अविराम अन्धकार से संघर्ष करती रहती है। शलभ दीपिशका में अपने को समर्पित करना चाहता है और दीपिशखा निर्वाण की ओर अग्रसर है। बौद्धमत में निर्वाण का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण-तृष्णाओं से भक्ति इच्छाओं पर विजय प्राप्ति एवं भोग विलास से विरक्ति है। इन सभी लक्षणों को महादेवी भी स्वीकारती हैं। वे कहती हैं –

''पंथ को निर्वाण माना,

शूल को वरदान जाना,

जानते यह चरण कण-कण

छू मिलन-उत्सव मनाना।

प्यास ही से भर लए अभिसार रीते।

ओस से द्रुल कल्प बोले।''[23]

यह जीवन-यात्रा एक पथ है और यही पथ अज्ञात प्रियतम के स्नेह में निर्वाण बनता है। इस पथ पर जाने वाला प्रत्येक पग शत्-शत् वरदान बन जाता है।

महादेवी ने अद्वैत की अनुभूति को महत्व देते हुए भी बौद्ध मत की निर्वाण को भी अस्वीकार नहीं किया है। अतः निर्वाण उनका साध्य न होकर परम सत्ता की प्राप्ति में साधन रूप है। जिसके कारण ही वह आध्यात्मिक मिलन की स्थिति को प्राप्त कर सकती है। अतः महादेवी में उपनिषदों के तत्व चिंतन तथा अद्वैत दर्शन के प्रभाव के साथ बौद्ध मत की स्थापनाओं को भी स्वीकार किया हैं। जिसका प्रभाव उनके रहस्यवादी कविताओं में परिलक्षित होता हैं।

रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद पर धर्म, दर्शन एवं साधना संबंधी पृष्ठभूमि -

रवीन्द्रनाथ ठाकुर बीसवीं सदी के कतिपय सार्वदेशिक विभूतियों में से एक थे। रवीन्द्रनाथ की मनीषा एक ऐसी विश्व-दृष्टि से सम्पन्न थी, जो एक साथ भारतीय तो थी, साथ ही साथ सार्वभौम एवं सार्वदेशिक भी थी। उनके साहित्य में जो आनंद धारा आविर्भूत होती है, वह सम्पूर्ण भारतीय जीवन दर्शन को विन्यस्त करती हुई विश्वज्ञान को उदार एवं समृद्ध बनाती है। अध्ययन के क्षेत्र में उन्हें संस्कृति, पालि, प्राकृत, वैष्णव, बाउन और संतों के लोक-साहित्य से गहन परिचय था। वेद, उपनिषद, शास्त्र, साहित्य-व्याकरण आदि विषयों का उन्होंने अध्ययन किया जिसका प्रभाव उनकी रचना को परिलक्षित होता है। असित कुमार बंद्योपाध्याय के अनुसार - ''जो रस धारा बहुत मात्रा में हमारे देश में आउल-बाउल-सहजिया, साधकों के पास था, ... उस लीलानंद के पास दीक्षा लेकर रूप जगत को अरूप जगत में अंगीभूत कर दिया।''[24] इसके अलावा रवीन्द्र-मानस के निर्माण में बंगाल के नवजागरण एवं पारिवारिक परिवेश का बहुत बड़ा योगदान रहा। पिता के माध्यम से उपनिषद और अन्य गुरूजनों के द्वारा वैष्णव-पदावली से परिचित हो चुके थे। संस्कार की दृष्टि से रवीन्द्र काव्य पर उपनिषद् का प्रभाव है। चौदह वर्ष की आयु में 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' की रचना उनकी वैष्णव पदावली की प्रीति का ही परिणाम है। विदेश यात्रा के दौरान पाश्चात्य साहित्य-धर्म और संस्कृति से भी उनका परिचय हुआ।

ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजाराम मोहन राय के सुधारवादी दृष्टकोण एवं जीवन-दर्शन का प्रभाव भी गुरूदेव पर पड़ा। राममोहन राय ईसाई धर्म के नैतिक आदर्श और इस्लाम धर्म के एकेश्वरवाद से प्रभावित थे। उन्होंने हिन्दू-धर्म में सुधारकर, प्राचीन उपनिषदों पर आधारित ब्रह्मवाद को लौटाना चाहा तथा उसी ब्रह्मवाद की प्रेरणा से विश्वधर्म की कल्पना की थी। उनकी सतीदाह निवारण चेष्टा 19वीं शताब्दी की एक स्मरणीय घटना है। इस आदर्श से प्रेरित महर्षि देवेन्द्रनाथ एवं उनके पुत्र रवीन्द्रनाथ ने पूर्ण निष्ठा के साथ ब्रह्मसमाज की गतिविधियों में भाग लिया। इन्हीं गतिविधियों के परिणामस्वरूप रवीन्द्रनाथ में आध्यात्मिक क्षुधा का संचार हुआ। उन्होंने सत्य की खोज में भारतीय दर्शन का अवगाहन किया। अंततः वे इस सिद्धांत पर पहुँचे की निर्मम हृदय में ही सत्य का अधिष्ठान है। इस प्रकार रवीन्द्र मानस के निर्माण में बंगाल का नवजागरण एवं सांस्कृति-सामाजिक उत्थान में ठाकुर परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण है। अपने व्यक्तित्व के निर्माण में कवि रवीन्द्र का कथन है - ''जिस मूर्तिकार ने मुझे बनाया है उसके हाथ का प्रथम कार्य बंगलादेश की मिट्टी से तैयार किया गया है। मेरे शिशुमन में ज्यादा मिलावट नहीं है। उसमें घर की हवा और लोगों का योगदान अवश्य है; किन्तु उसके मूल उपकरण उसमें ही विद्यमान थे।''[25] रवीन्द्रनाथ की प्रसिद्धि का आधार गीतांजलि की रहस्यवादी चेतना के रूप में अग्रसर है। उन्होंने स्वयं जीवन-स्मृति में कहा है, ''मुझे लगता है कि मेरी काव्य रचना की एकमात्र विशेष प्रकृति है और वह है सीमा के मध्य ही असीम के सहित मिलन-साधना की प्रवृति।''[26] इन्होंने प्रकृति और मानव को काव्य की सीमा के रूप में ग्रहण करते हुए असीम अर्थात् ब्रह्म के साथ इन दोनों के मिलन को साधना का रूप दिया है।

इनकी रहस्यवादी चेतना व्यापक मानवीय धर्म की पृष्ठभूमि पर व्यक्त हुई है। उपनिषदों में आनंदवाद, वैष्णवों के नीलावाद और बाउलों एवं संतों की

सार्वजनीन सहज साधना ने रवीन्द्रनाथ को विशेष रूप से आकर्षित किया। उन्होंने 'दादू' (रवीन्द्र लिखित भूमिका) में कवि ने कहा है, ''इन भारतीय साधकों की साधनाधारा ही वर्तमान काल में राममोहन राय के जीवन में प्रकाशित हुई है। इस युग में वे ही उपनिषदों के ऐक्यतत्व के आलोक में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सबको सत्य दृष्टि से देख पाये थे, उन्होंने किसी का वर्जन नहीं किया।''[27]

कवि रवीन्द्र का यह कहना था कि मध्ययुगीन संतों ने प्रेम के द्वारा ही हिन्दू-मुसलमान के बीच एकता स्थापित की थी। इनकी दृष्टि में संतों की कविता चिर आधुनिक है, सर्वकालीन है क्योंकि सत्य का साक्षात्कार इसमें किया गया है। मध्ययुगीन संतों में संत कबीरदास को संतों के प्रतिनिधि के रूप में देखा एवं उनके एक सौ पदों का अंग्रेजी अनुवाद – 'One hundred poems of Kabir (Indian Society, London 1914) प्रकाशित कराया। 'कबीर ग्रंथावली' में डॉ0 श्यामसुन्दर दास ने रवीन्द्रनाथ के गीतांजलि पर कबीर के अध्ययन को स्वीकारा है और रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद के बीज को उन्होंने कबीर में भी पाया है। सीमा के मध्य असीम से मिलने की साधना के पीछे उनके समन्वयवादी दृष्टि ही है। मानवीय समता के आधार पर जीव और ब्रह्म के मध्य अद्वैत भाव की सृष्टि हुई है। वैष्णवों का प्रेमतत्व बाउलों का सहज मानवीयबोध, संतों की एक्य साधना और 19वीं शताब्दी में बंगाल के नवजागरण के अग्रदूत राजाराममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती की सामाजिक चेतना आदि ने रवीन्द्रनाथ के मानस में मानव की मर्यादा और धर्म के व्यवहारिक पक्ष की पूर्ण प्रतिष्ठा की।

रवीन्द्रनाथ की रहस्यवादी कविताओं में धर्म दर्शन और साधना संबंधी प्रभाव-

यह विश्व परमात्मा का बिम्ब है। रहस्यानुभूति में उस अज्ञात को जानने की उत्सुकता एक सच्चे साधक में विद्यमान होती हैं, साधक अपने बोध की पकड़ में उस रहस्यमय को जानने समझने का प्रयास करता हैं। ''अज्ञात अगर ज्ञात होता है तो मानस बोध की सीमा में ही। शारीरिक इंद्रियों द्वारा उसे पाना संभव नहीं – वह अरूप, अज्ञात जो है।''[28] इसलिए कवि रवीन्द्र उस असीम के स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं पा रहे हैं लेकिन उस अनुभूति के प्रति जिज्ञासा उनके हृदय में उठता हैं| उदाहरण दृष्टव्य हैं -

''के तुमि गाहिछ गान आकाश-मण्डले।''[29]

रवीन्द्रनाथ की आध्यात्म-चेतना का मार्ग अनुभूति का मार्ग है। उन्होंने उस परमतत्व को हृदय के सात्विक ज्ञान एवं रसात्मक अनुभूति के आधार पर ग्रहण किया है। कवि रवीन्द्र को अद्वैतवाद, शैव-दर्शन, संत, सूफी की दार्शनिक चेतना का अच्छा ज्ञान था। लेकिन प्रभाव की दृष्टि से संतों के ज्ञानमार्ग, सूफियों के प्रेममार्ग एवं स्वामी विवेकानंद के व्यवहारिक वेदांत से एवं बाउलों के सहज मानव-धर्म से काफी प्रभावित थे। स्वामी विवेकानंद ने भी मनुष्य में ही ईश्वर के स्वरूप को देखा है। रवीन्द्रनाथ का ब्रह्म अखण्ड, अगम, अगोचर, वर्णनातीत एवं सर्वव्यापक है। श्री सुबोधचन्द्र सेनगुप्त का कथन है - ''उन्होंने जीवन का समस्त अच्छा-बुरा, टूटी-फूटी चीजों के भीतर से जीवन को अखण्ड तात्पर्य के माध्यम से अभिन्न रूप में देखा है और फिर कवि के काव्य में उपस्थित होकर चिरंतर के साथ व्यक्तगित वस्तु को विश्व के साथ, खण्ड को अखण्ड के साथ सम्मिलित करके काव्य को उसके भावी परिणाम के तरफ अग्रसर किया है।''[30]

परम तत्त्व इस सृष्टि के कण-कण में, व्यष्टि और समष्टि दोनों रूपों में विराजमान हैं। उसके स्वरूप को किसी निश्चित धारणा या आकृति में आबद्ध

नहीं किया जा सकता। वह रूप-अरूप, सीमा-असीम, द्वैत-अद्वैत, साकार-निराकार सभी में आनंदस्वरूप विद्यमान है। वह एक होकर भी अनेकों में विद्यमान हैं। वह वर्णातीत है। उसके स्वरूप को बाँधने में वेद-वेदांत भी निष्फल है –

''स्वरूप तौर के जाने / तिनि अनंतमंगल

संधान तौर के करे / निष्फल वेद-वेदांत,

परब्रह्म, परिपूर्ण, अति महान / तिनि आदिकारण

तिनि वर्णन-अतीत।''[31]

यह रहस्य की स्वतः अनुभूति का मार्ग है जिसमें 'परमतत्व' स्वयं मानस के भावों में निहित है। संत कबीरदास ने भी मृगकस्तूरी की उपमा देकर परमात्मा को मनुष्य के हृदय में पाया है। जो अज्ञानता के अंधकार में है, वही मृग की तरह कस्तूरी की सुगंध को खोजते फिरते है–

''कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन मॉहि।

ऐसे घटि घटि राम है, दुनिया देखै नाहि।''[32]

'उत्सर्ग' कविता में कवि रवीन्द्र की स्वतः अनुभूति मृग के समान ही दिखाई देती है –

''पागल हइया बने-बने फिरि

आपन गंधे मम

कस्तूरीमृग सम।''[34]

कवि की इस व्याकुलता में ईश्वर को पाने की लालसा व्यक्त हुई है। कवि का हृदय यह जानता है कि उसके हृदय में ही देवता का निवास है।

यह विश्व परमात्मा का बिम्ब है। जीव का उससे भिन्न कोई अस्तित्व नहीं इसी विचारधारा के आलोक में कवि रवीन्द्र की दृष्टि प्रतिफलित हुई है। 'जीवनस्मृति' में कवि रवीन्द्र ने सीमा के मध्य असीम की मिलन-साधना की जो बात कही है, उसमें उनकी अद्वैतवादी विचारधारा का समावेश है। आत्मा और परमात्मा में वे भेद नहीं स्वीकार करते बल्कि वे मानते हैं परमात्मा को अपने अस्तित्व के ज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है। उपनिषद में भी आत्मा के ज्ञान, दर्शन और मनन से परमतत्व और जीवन में अभेद की स्थिति को स्वीकार किया जा सकता है। कवि रवीन्द्र के अनुसार अद्वैत ही लीला के कारण द्वैत हो जाता है। इसी कारण वे जीवात्मा के स्वतंत्र सत्ता को भी स्वीकार करते हुए कहते हैं कि, सीमा के बीच भी तुम असीम हो। तुम्हारा प्रकाश ही मेरे और इस जगत के अंदर समाहित है तभी तुम्हारी यह रूप की लीला सभी ओर अपनी छटा बिखेर रही है –

''सीमार माझे असीम तुमि, बाजाओ आपन सूर।

आमार माझे तोमार प्रकाश ताई एतो मधुर।

कतो वर्णे कतो गन्धे, कतो गाने कतो छन्दे,

अरूप, तोमार रूपेर लीलाय जागे हृदय-पूर –

आमार माझे तोमार शोभा एमन सुमधुर।।''[34]

यह रहस्यवादी साधना का अंतिम अवस्था है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के मध्य अद्वैत-भाव की सृष्टि होती है। साधक निरंतर साधना में सत्य

का ज्ञान, मिलन की अद्भुत आकांक्षा, वेदना की सहनशीलात एवं अपना सर्वस्व उस परम सत्ता के पास सौंप देने का आत्मनिवेदन करता हैं। इसके बाद ही साधक उस असीमानंद की रसानुभूति एवं उसके ज्ञानात्मक आलोक को प्राप्त कर लेता है। तब जीव तथा ब्रह्म का अह्म भाव-अद्वैत भाव में बदल जाता है। उपनिषद में ब्रह्म को सर्वव्यापक, जड़-चेतन सभी तत्वों में समाहित माना गया है। इसी आधार पर कवि रवीन्द्र ब्रह्म के साथ अखण्ड अस्तित्व स्वीकार करते हैं। आत्मा परमात्मा के मध्य अद्वैतवाद की सृष्टि को भारतीय दर्शन के 'सर्वात्मवाद' की चिंतनधारा में देखा जा सकता है। दर्शन से प्रभावित कवि रवीन्द्र की मानवीय-एकता का रूप उनके काव्यों में दिखाई पड़ता है। भारतीय अद्वैतवाद जो मूलतः शंकराचार्य के अद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है एवं जो जगत को माया, मिथ्या और ब्रह्म को सत्य प्रमाणित करता है लेकिन सर्वात्मवाद में जगत मिथ्या नहीं बल्कि सर्वकाल एवं सत्यरूप है। इसका प्रमुख सिद्धांत है – (1) जगत् ईश्वरमय है। (2) प्रकृति और परमेश्वर मूलतः एक है। (3) तत्वतः सत्ता एक है और स्वरूपतः दिव्य एवं चेतन है। (4) जगत माया या मिथ्या नहीं, प्रत्युत सत्य है।

सर्वात्मवाद के सिद्धांत के आधार पर अमर कवि रवीन्द्र के मानवतावादी बोध को देखे तो ऐक्यमूलक साधना की प्रेरणा में इसी दर्शन का प्रभाव दृष्टिगत होता है। कवि रवीन्द्र ने आत्मा एवं परमात्मा में कभी भेद नहीं स्वीकारा है। उनके अनुसार आत्मा के स्वरूप ज्ञान से परमात्मा को जाना जा सकता है। उन्होंने स्वयं कहा है - ''आत्मा के अन्दर निकेतन में देखो – जहाँ आत्मा बाहर के हर्ष-शोक से अतीत है, उस निभृत अन्तरतम गुहा के मध्य प्रवेश करके देखो, वही परमात्मा का आनंद है। परमात्मा इस जीव में ही आनंदित है।''[35] कवि जीव तथा ब्रह्म के मध्य किसी बाधा को नहीं मानते, बल्कि आत्मज्ञान से परम तत्व को भली-भाँति पहचानते हैं। कवि जन्म-

जन्मांतर से उस तत्व को अपने अंदर ही महसूस करते हैं और जब उस तत्व को इस सृष्टि के कण-कण में देखते हैं तो उन्हें यह आभास होता है कि वही परम तत्व जो उनके अंदर समाहित है, सृष्टि के कण-कण में भी वही विराजमान है। चैताली काव्य संग्रह के 'नारी' कविता में इस दर्शन को देखा जा सकता हैं-

''तुमिऐ मनेर सृष्टि, ताहे मनेमाझे,

एमन सहजे तब प्रतिमा विराजे।

जखन तोमारे हेरि जगतेर तीरे

मने हय मन हते ऐसेछे बाहिरे।

जखन तोमारे देखि मनेमाझखाने

मने हय जन्म-जन्म आछे एई प्राणे।''[36]

यह विचारधारा स्वामी विवेकानंद के व्यवहारिक वेदांत दर्शन की प्रेरणा है। इनके अनुसार प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म एवं अखण्ड है। मनुष्य की सद्वृत्तियों में ब्रह्म का कल्याणमय स्वरूप विराजमान है। आत्मा अविनाशी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान है। आत्मा का न कभी जन्म होता है, न मृत्यु। आत्मा में ही विश्व की धारणा होती है और यह बहिर्जगत उसी अन्तर्जगत का प्रकाशमात्र है। अर्थात् कवि रवीन्द्र के दर्शन में अद्वैत की स्थिति को स्वीकारते हुए द्वैत का भाव भी निहित है।

रहस्यवाद की प्रमुख विशेषता है कि सच्चा साधक अपने निष्काम प्रेममूलक साधना के द्वारा अपने अराध्य के समक्ष अपने अहंभाव को त्यागकर आत्म-समर्पण करे। ब्रह्म से मिलने के लिए आत्मा अत्यंत प्रयासरत रहती है। उसे कई लौकिक विघ्नों से मुक्त होना पड़ता है, जो ब्रह्म मिलन में बाधक होते

हैं। अनंत सत्ता की प्राप्ति के लिए यह स्वाभाविक है कि माया, इंद्रियाँ मन रूपी कठिनाइयों का सामना साधक को करना पड़ता है। मिलन का मार्ग सहज नहीं। इसके लिए हृदय की पवित्रता, निश्छलता, निःस्वार्थता का होना आवश्यक है। एक सच्चा साधक अपने साधना पथ का विघ्न, अहम को सर्वप्रथम विसर्जित करता है। कवि रवीन्द्र से लेकर संत, सूफी, छायावादी कवियों की भक्ति-भावना इसी दर्शन पर आधारित है। संत कबीर ने ईश्वर और जीवन में अद्वैत-भाव की सृष्टि के लिए अपने अहं के त्याग एवं आत्म निवेदन के भाव को सर्वश्रेष्ठ माना है। इसलिए वे कहते हैं ''तूँ, तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ'', इसी आधार पर कवि रवीन्द्र ने 'गीतांजलि' की प्रथम कविता में अपने समस्त अहं का विसर्जन करने की प्रार्थना अपने अराध्य से कर रहे हैं –

''आमार माथा नत करे दाउ हे तोमार

चरण धुलाए तले ।

सकल अहंकार हे आमार

डुबाऊ चोखेर जले।।''[37]

रहस्यवादी साधक के लिए अपने अराध्य के प्रति अटूट आस्था होना चाहिए। साधक अपने साधना के मार्ग पर तभी टिका रह सकता है जब उसे अपने अराध्य में आस्था होगा। कवि रवीन्द्र अपने साधना पथ पर चलते हुए परमतत्व में अटूट आस्था रखते हुए कहते हैं कि, हे मेरे ईश्वर मैं जानता हूँ कि मैं जब अपनी पतवार को छोड़कर तुझमें खुद को लीन कर लूँगा तब तुम मेरा उधार अवश्य करोगे। गीतिमाल्य काव्य संग्रह के कविता संख्या 6 में इस उदाहरण को देखा जा सकता हैं –

''आमि हाल छाड़ले तवे

तुमि हाल धरबे जानि।''[38]

यहाँ अपने अराध्य के प्रति अटूट आस्था और भक्ति दिखाया गया है। आत्म-समर्पण से युक्त इस निष्काम साधना पथ पर चलते हुए दुःखों से व्यथित होने पर भी उस असीम के बंधन से मुक्त होना नहीं चाहते। साधना पथ के कठिन मार्ग पर चलते हुए भी उन्हें आभास होता हैं, जैसे समस्त चर-अचर, सृष्टि में वे उस परमतत्व को ही महसूस करते हैं, वे उसी परमतत्व को प्रेम करते हैं। कवि स्वयं अपने 'आत्म परिचय' में इस बात का उल्लेख करते हैं। यह साधक की दृढ़-संकल्प और आत्म-समर्पण की पराकाष्ठा है –

''आज मने हय सकलेरी माझे

तोमारेई भालोबेसेछि

जनता वाहिया चिरोदिन धरे

शुधु तुमि आमि ऐसेछि।''[39]

कवि रवीन्द्र की दृष्टि में ब्रह्म का स्वरूप अखण्ड है। उनके दर्शन में केवल अद्वैत ही नहीं द्वैत भाव भी सन्निहित है। रहस्यवादी साधक के हृदय में अपने अराध्य के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी। भारतीय दर्शन के छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है, ''एकोहंबहुस्याम'' अर्थात् मैं एक अनेक रूप में छुपा हूँ| एक से अनेक होने की स्थिति में ही इस सृष्टि का निर्माण हुआ जैसे बीज एक होता है किन्तु समय पाकर उसमें से अंकुर फूटता है फिर तना, डाल, पत्तियाँ, फूल, फल और अंत में बीज रूप में वह अनेक हो जाता है। प्रत्येक बीज उस पूर्व बीज के ही समान है। अर्थात् सृष्टि के कण-कण में उस परमतत्व की ही अनुभूति समाहित है। कवि रवीन्द्र के काव्य-संग्रह 'गीतांजलि' के गीत संख्या 30 में इस दर्शन को देखा जा सकता है। जब

वे कह रहे हैं, हे ईश्वर, पतों पर स्वर्ण बरन का जो आलोक नृत्य कर रहा है वह तो तुम्हारा ही प्रेम है। मधुर अलस से भरे आकाश में जो मेध है और जो हवा देह पर अमृत बरसा रही है वह भी तो तुम्हारा ही प्रेम है। अर्थात् रवीन्द्रनाथ सृष्टि के कण-कण में उस परमतत्व के अस्तित्व को स्वीकारते हैं –

''ऐहे तो तोमार प्रेम ओगो / हृदयहरण।

ऐहे जे पाताये आजो नाचे / सोनारवरण।

एहे जे मधुर आलस भरे

मेघ भेषे जाए आकाश - 'परे'

एहे-जे वातास रेहे करे / अमृत खरन

एहे तो तोमार प्रेम, ओगो / हृदयहरण।''[40]

अतः रवीन्द्रनाथ उपनिषद के 'सत्यं शिवम् और अद्वैतं ' की धारणा को स्वीकारते हैं | वे 'अहम् ब्रह्मास्मि' के उपासक थे | उन पर उपनिषद और मध्यकालीन संत कवियों का प्रभाव स्पष्ट हैं | उनका ब्रह्म सृष्टि के कण - कण में व्याप्त हैं |

<u>धर्म, दर्शन एवं साधना सम्बन्धी रहस्यवाद : महादेवी वर्मा एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ</u>

<u>तुलनात्मक निष्कर्ष :</u>

जो साहित्य मानवीय मूल्यों का पक्षधर हो, वही सर्वश्रेष्ठ साहित्य होता है। इस दृष्टि से कवि रवीन्द्र और महादेवी वर्मा की कविताओं का दार्शनिक पक्ष मानवीय मूल्यों पर आधारित है। इन दोनों ने विश्वकल्याण की

भावना को अपना धर्म मानकर, मानवता रूपी चादर को ताउम्र ओढ़े रखा। इनका कवित्व-संस्कार भारतीय अद्वैतभाव, सर्वात्मवाद की पृष्ठभूमि पर मानवतावाद को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करता रहा। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं विश्व-बंधुत्व की भावना से समृद्ध इनकी रचनाओं में प्रेम सहयोग, सेवा-करुणा आदि उदात्त जीवन मूल्यों की स्थापना हुई हैं। इनकी दृष्टि में आत्मा-परमात्मा का जो द्वैत स्वरूप है, वह एकमात्र प्रेम, दया और सेवा रूपी निःस्वार्थ मार्ग पर चलकर ही अद्वैत-भाव की सृष्टि करता है। स्वामी विवेकानंद ने भी 'मानव ही ईश्वर है' कहकर मानवीय जीवन के आदर्शों को ग्रहण करने की प्रेरणा दी है। उनका व्यवहारिक-वेदांत कर्म करने की सीख देता है और इसी सेवा रूपी कर्म के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति संभव है। मानव के प्रति कवि रवीन्द्र की असीम और अप्रतिम अनुराग के संदर्भ में रवीन्द्र साहित्य के मर्मज्ञ प्रथमनाथ विशी का कथन है कि - ''रवीन्द्रनाथ ने काव्य में भगवान की कभी खोज नहीं की अपितु, मनुष्य की खोज में ईश्वर का संधान किया है।''[41] दूसरी ओर महादेवी अध्यात्म की साधिका हैं, अपनी वासनाओं, तृष्णाओं और कामनाओं पर विजय प्राप्त करना। अपने अंदर के अहं का त्याग करके लोक-कल्याण में अर्पित कर देना। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट, विभ्रन्ति एवं समन्वयशील रहा है।

कवि रवीन्द्र की आध्यात्मिक-चेतना के भीतर 'जीवन देवता' की अवधारणा को उनके काव्य-प्रकाश या मानवीय अहम भाव के संदर्भ में देखा गया है। जिस जीवन देवता की बात कवि करते हैं, वह वैष्णवों का द्वैत हो या उपनिषद का अद्वैत, कवि का उस अन्तर देवता के साथ संबंध और उनकी रचना में उसके महत्व पर रवीन्द्र स्वयं कहते हैं कि, ''द्वैतवाद-अद्वैतवादेर कोनो तर्क उठिले आमि निरूत्तर हहेवा थाकिव। आमि केवल अनुभवेर दिक दिया बिलतेछि आमार मध्ये आमार अन्तरदेवतार एकटि प्रकाशेर आनंद रहियाछे – सेई आनन्द

सेई प्रेम आमार समस्त अंग्रप्रत्यंगे, आमार बुद्धिमन आमार निकटे प्रत्यक्ष ऐइ विश्वजगत आमार अनादि, अतीत व भविष्यत परिप्लुत करिया आछे।''[42] रवीन्द्रनाथ उपनिषद् के 'सत्यं शिवम् और अद्वैतम्' के दर्शन से प्रभावित थे। वे 'अहम् ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) के उपासक थे। रवीन्द्र को वह असीम अपने अन्तर में दिखाई पड़ता है –

(i) **''आमार चित्ते तोमार सृष्टिखानि**

रचिया तुलिछे विचित्र एक वाणी।

तारि साथे प्रभु मिलिया तोमार प्रीति

जागाऐ तुलिछे आमार सकल प्रीति गीति,

आपनारे तुमि देखिछ मधुर रसे

आमार माझारे निजेरे करिया दान।''[43]

(ii) **''एहे प्राणेर भरा माटिर भीतरे**

कत जुग मोरा जेपेछी

कत शरतेर सोनार आलोके

कत तृण दोंहे केपेंछी।''[44]

रवीन्द्रनाथ की प्रायः सभी रहस्यवादी कविताओं में ही देखा जा सकता है कि कवि अपने गंभीर सत्ता को विश्व के बीच स्वयं अपने ही अंदर अनुभव करने का प्रयास करते हैं। 'रवि रश्मि' ग्रंथ के चारूचन्द्र बन्ध्योपाध्याय का कथन है कि, ''समग्र जीवन में आत्म प्रकाश की जो प्रेरणा है, इस मानव यंत्र के जो चालक है वही कवि का अन्तर्यामी अथवा जीवन देवता है।''[45] दूसरी ओर

महादेवी का प्रियतम अशरीरी और अलक्षित हैं , इसलिए वह कभी सम्पूर्ण सृष्टि में दिखाई पड़ता हैं और कभी ह्रदय में लक्षित होता हैं | महादेवी कहती हैं कि , वह प्रियतम मेरे अन्दर समाया हुआ है फिर उससे अलग मेरा परिचय क्या होगा | तर्कों में जैसे विद्युत् और प्राणों में स्मृति हैं , वैसे ही पलकों में अलौकिक प्रियतम के नीरव पद की गति है | मेरे छोटे से ह्रदय में प्रिय का संसार समाया हुआ हैं -

(i) **''तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय का !**

तारक में छवि प्राणों में स्मृति,

पलकों में नीरव पद की गति,

लघु उर में पुलकों की संसृति

मुझ में नित बनते मिटते प्रिय !

स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या?''[46] (नीरजा)

(ii) **''प्रिय बसा उर में सुभग !**

सुधि खोज की बसती कहाँ?''[47] (सांध्यगीत)

महादेवी के काव्य दर्शन में अद्वैतवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है। महादेवी अलौकिक प्रियतम के दर्शन में अद्वैत की स्थिति को तो स्वीकार करती ही है परन्तु द्वैत के महत्व को भी स्वीकारती है। महादेवी स्वयं ही 'रहस्यवाद' शीर्षक निबंध में कहती है, ''रहस्यवाद में जो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, उन सब के मूल रूप हमें उपनिषदों की विचारधारा में मिल जाते हैं। रहस्यभावना के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असंभव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की

इच्छा आधार खो देती है।''[48] 'छान्दोग्य उपनिषद' के 'एकोहं बहुस्यामः' में महादेवी के इसी दर्शन की झलक मिलती है। महादेवी को सर्वत्र अपने अलौकिक प्रियतम के दर्शन होते हैं। रहस्यवादी साधिका महादेवी स्वयं भी उसी सत्ता में लीन है। कवि रवीन्द्र का द्वैतवाद अर्थात् कवि और जीवन देवता का ही रूप है। कवि रवीन्द्र के लिए सम्पूर्ण जगत उस ब्रह्म का ही लीला क्षेत्र है। रवीन्द्र सम्पूर्ण जगत में उस प्रकाश अर्थात् कवि के जीवन देवता की ही प्रतिछाया को स्वीकारते हैं | सम्पूर्ण जगत में ब्रह्म का ही रूप होने के कारण पूरी मानवता से कवि को प्रेम है। गीतांजलि के गीत संख्या 107 में उन्होंने प्रभु को असहाय, सर्वहीनों के बीच पाया है। वे कहते हैं जहाँ सबसे अधम, दीन से भी दीन रहते हैं वहीं तुम्हारे चरण विराजते हैं। सबसे पीछे, सबसे नीचे सर्वहारा जन के बीच -

<u>रवीन्द्रनाथ –</u>

''जेथाए थाके सबार धम दीनेर हते दीन,

सेई खाने जे चरण तोमार राजे,

सबार पीछे, सबार नीचे,

सव-हारा देर माझे।''[49]

<u>महादेवी –</u>

''मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है !

मेरी आँखों में ढलकर

छवि उसकी मोती बन आई;

उसे घन-प्यालों में है

विद्युत सी मेरी परछाई;

नभ में उसके दीप, स्नेह

जलता है पर मेरा उनमें।''[50] (नीरजा)

अध्यात्म के अनुसार इस निखिल ब्रह्माण्ड में संसार की सभी वस्तुएँ – जड़ चेतन अथवा आत्मचेतन सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न हैं। ब्रह्म ही के द्वारा विकसित होकर पुनः ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। इस दर्शन की झलक महादेवी और रवीन्द्र की रहस्यवादी कविताओं में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। आत्मचेतन जिज्ञासाओं के कारण ही मनुष्य अनुभव करता है कि वह केवल व्यक्तिगत प्राणी ही नहीं बल्कि विश्वगत समस्त प्राणियों का एकात्म भी है। विश्वव्यापी सत्ता पूर्ण है। भारतीय दर्शन में इसका अकाट्य उदाहरण है -

''ऊँ पूर्णमंदः पूर्णामिदं पूर्णआत्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।''

रवीन्द्रनाथ ने इसे स्वीकारते हुए अपने निबंध 'अनंत की साधना' में कहा है कि ''अपने अंतरात्मा में परमात्मा का बोध पूर्णता की पराकाष्ठा में ही होता है।''[51]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर मानवतावादी थे। रवीन्द्रनाथ के मानवतावाद पर बाउल संप्रदाय और सूफियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। मध्ययुग में 15वीं शताब्दी में बंगाल के गाँवों में निरक्षर बाउल संप्रदाय का विकास हुआ था। ये साधक संसार का मोह त्यागकर 'मनेर मानुष' की खोज में निकले थे। इस संप्रदाय में वैष्णव बाउल तथा सूफी बाउल दोनों हैं। संत परम्परा में हिन्दु और मुसलमान दोनों थे, बाउल संप्रदाय में भी दोनों थे। बाउल के गीतों में हृदय को

आलोड़ित करने वाली वेदना से रवीन्द्र प्रभावित थे। महादेवी तो 'वेदना' का साधिका ही रही हैं और उनकी वेदना का प्रभाव बौद्ध दर्शन के 'दुःखवाद' से रहा है। अर्थात् महादेवी और रवीन्द्रनाथ दोनों ही अपने अराध्य से मिलन में विरह, वेदना, दुःख के महत्व को स्वीकार करते हैं। वास्तव में जब तक मनुष्य अतृप्त होता है तब तक प्राप्ति के लिए वह निरंतर कर्मरत रहता है। सही मायने में प्राप्ति ही केवल जीवन लक्ष्य नहीं, बल्कि उस प्राप्ति के लिए निरंतर कर्मरत रहकर बढ़ते रहने की प्रक्रिया में ही जीवन का सत्य है। इसलिए महादेवी और रवीन्द्र दोनों ही जीवन में विरह को महत्व देते हैं –

<u>महादेवी –</u>

''खोज ही चिर प्राप्ति का वर

साधना ही सिद्धि सुंदर,

रूदन में सुख की कथा है,

विरह मिलने की प्रथा है,

शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष में !

आँसूओं के देश में।''[52] (दीपशिखा)

<u>रवीन्द्रनाथ –</u>

''हेरि अहरह तोमारि विरह

भुवने-भुवने राजे है।

X X

सकल जीवन उदास करिया

कत गाने सुरे गलिया झरिया

तोमारि विरह उठिछे भरिया

आमार हियार माझे है।''[53] (गीतांजलि)

रहस्यवादी साधक के लिए आत्म-चेतना के परिष्कार, विस्तार एवं विकास की आवश्यकता होती है। जब तक वह लौकिक आकर्षणों में उलझा रहता है तब तक अलौकिक सत्ता की अनुभूति प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। अतः महादेवी और रवीन्द्रनाथ दोनों ने अपने साधना पथ में अहं के विसर्जन को स्वीकृति दी है –

<u>महादेवी –</u>

''तू जल जल जितना होता क्षय,

वह समीप आता छलनामय;

मधुर मिलन में मिट जाना तू –

उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल रिक्त?

मंदिर मंदिर मेरे दीपक जल।''[55] (नीरजा)

<u>रवीन्द्रनाथ –</u>

''आमार माथा नत करे दाउ हे तोमार

चरणधुलार तले।

सकल अहंकार हे आमार

डुबाओ चोखेर जले।''[56] (गीतांजलि-1)

मृत्यु संबंधी दृष्टिकोण भी व्यक्ति के जीवन-दर्शन का अंग है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा अमर और परमात्मा से अभिन्न होती है। इस धारणा के आधार पर महादेवी के लिए मृत्यु और जीवन में विशेष अंतर नहीं है। बल्कि मृत्यु अपेक्षाकृत श्रेयष्कर है, क्योंकि उस स्थिति में परमात्मा से मिलन सहज होगा। मृत्यु का अर्थ यदि मिटने से भी है तो भी रहस्यवादिनी साधिका महादेवी और रवीन्द्र दोनों ही इसे स्वीकार करते हैं, क्योंकि बिना मिटे कोई भी महान तत्त्व उपलब्ध नहीं होता। रवीन्द्रनाथ जीवन और मृत्यु दोनों को सहोदर बंधु मानते हैं और कहते हैं कि मृत्यु के गर्जन के बीच से ही उस परमसत्ता से मिलन संभव है –

<u>रवीन्द्रनाथ –</u>

''दूर से क्या सुनता है मृत्यु का गर्जन

X x x

प्रत्येक मृत्यु में धरीत और आकाश का

मूर्छित और विह्वल कर देनेवाला आलिंगन

इसी के बीच से रास्ता चीरते हुए

नए समुद्र तीर पर

नाव लिए जाना होगा पार,

पुकारता है कर्णधार।''[56] (बलाका-27)

<u>महादेवी –</u>

''क्या जीने का मर्म यहाँ मिट मिट सबने जाना।

तर जाने को मृत्यु कहा क्यों बहने को जीवन?

सृष्टि मिटने पर गर्वीली।''[57] (सांध्यगीत)

<u>निष्कर्षत</u> : रवीन्द्रनाथ और महादेवी दोनों ने ही मानवप्रेम और लोक-कल्याण को अपने धर्म के रूप में स्वीकृति दी है। विवेकानंद अद्वैत ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मानव की सेवा एवं कर्म साधना को ग्रहण करने की बात करते हैं। वहाँ कवि रवीन्द्र और महादेवी दोनों ने मानवता के आधार पर असीम से मिलने की इच्छा में दृढ़ साधना पथ को महत्व दिया है। तुलनात्मक दृष्टि से दोनों के रहस्यवादी कविताओं के दर्शन का आधार एक ही है – लोककल्याण। महादेवी की रहस्यवादी कविताओं एवं उनके जीवन-दर्शन पर अद्वैत दर्शन एवं बौद्ध दर्शन दोनों का स्पष्ट प्रभाव उनकी रहस्यानुभूति पर विशेष रूप में दृष्टिगोचर होता है। रवीन्द्रनाथ पर उपनिषद् के अद्वैतभाव का प्रभाव स्पष्ट है जिस पर विवेकानंद के नव्य वेदांत दर्शन की झलक दिखलाई पड़ती है। दोनों ने ही अपनी रहस्यवादी साधना में अलौकिक सत्ता से अद्वैत की स्थिति को स्वीकार किया हैं साथ ही साथ द्वैत के महत्व का भी प्रतिपादन किया हैं। दोनों के रहस्यवादी कविताओं पर मध्यकालीन भक्त कवियों की दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव दिखलाई पड़ता हैं। महादेवी की करुणा पर जहाँ बौद्ध-दर्शन का प्रभाव है वही रवीन्द्र बाउलों की वेदना से प्रभावित थे। अतः महादेवी और रवीन्द्रनाथ ने अपनी रहस्यवादी कविताओं के दर्शन में उपनिषेदों के तत्त्व चिंतन को आत्मसात करके उस अनुभूति को आधुनिक शब्दावली में व्यक्त किया है।

सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची –

1. धर्म दर्शन और विज्ञान में रहस्यवाद, संपादक - कल्याणमल लोढ़ा और वसुंधरा मिश्रा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 2002, पृ0 - 258

2. भारतीय दर्शन, डॉ. शोभा निगम, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, संस्करण - 2008 , पृ0 - 1

3. क्या कहते है दर्शन ?, महेश शर्मा, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, प्रकाशित वर्ष - 2005, पेपरबैक, पृ0 - 1

4. Introduction to philosophy, Edgar S. Brightman, Henry Holt and Co., New York (1925), page - 07

5. Democracy and education, D.V.John, page – 378

6. Philosophy of Art, Ducasse C.J., Dial Press, New York (1929), page - 03

7. रवीन्द्र रचनावली, पंचोदश खण्ड, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथन विभाग , कोलकाता, बंगाब्द - 1417 (पुनर्मुद्रण), पृ0 - 31

8. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ0 - 18

9. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ0 – 424

10. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ0 – 177

11. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ0 – 337

12. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ0 – 338

13. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ0 – 419

14. महादेवी साहित्य (खण्ड - एक), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ0 – 188

15. नीरजा (महादेवी साहित्य खण्ड - 1), सं. - निर्मला जैन, पृ0 – 177

16. नीरजा (महादेवी साहित्य खण्ड - 1), सं. - निर्मला जैन, पृ0 – 183

17. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, पृ0 – 424

18. महादेवी साहित्य खण्ड - 1, सं. - निर्मला जैन, पृ0 – 138

19. महादेवी साहित्य खण्ड - 1, सं. - निर्मला जैन, पृ0 – 209

20. महादेवी : नया मूल्यांकन, गणपतिचंद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ0-55

21. महादेवी साहित्य खण्ड - 1, सं. - निर्मला जैन, पृ0 – 273

22. महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2007, पृ0-221

23. महादेवी साहित्य खण्ड - 1, सं. - निर्मला जैन, पृ0 – 361

24. बंगला साहित्ये सम्पूर्ण इतिवृत, असित कुमार बंद्योपाध्याय, प्रकाशक-श्रीसनीत बसु बंकिमचटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता, 1996, पृ0-504

25. छेलेबेला, पृ0-80

26. जीवन स्मृति, पृ0-49

27. दादू, क्षितिमोहन सेन, विश्वभारती गवेषणा प्रकाशन विभाग, शान्तिनिकेतन, संस्करण-वैशाख 1394 (बंगाब्द), पृ0-20-21

28. रवीन्द्र-साहित्य की समीक्षा, शिवनाथ, हिन्दी समिति प्रकाशन, लखनऊ,1976, पृ0-279

29. संचयिता, पृ0-528

30. रवीन्द्रनाथ, श्री सुबोधचन्द्र सेनगुप्त, प्रकाशक-रंजन सेनगुप्त ए. मुखर्जी एण्ड कं0 प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता, संस्करण-1393 (बंगाब्द), पृ0-90

31. गीतवितान, पृ0-843

32. कबीर ग्रंथावली, सं0-श्यामसुन्दर दास, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014, पृ0-112

33. संचयिता, पृ0-463

34. संचयिता, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रकाशक-शुभन-7, श्यामचरण दे स्ट्रीट, कोलकाता, तृतीय संस्करण-2011, पृ0-372

35. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-3), शांतिनिकेतन, 1368 बंगाब्द, पृ0-433

36. रवीन्द्र रचनावली (तृतीय खण्ड), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती, ग्रंथन विभाग, कोलकाता, पुनर्मुद्रण-1421 (बंगाब्द), पृ0-31

37. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-6), श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती, ग्रंथन विभाग, कोलकाता, पुनर्मुद्रण-1421 (बंगाब्द), पृ0-13

38. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-6), पृ0-109

39. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-14), श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती, ग्रंथन विभाग, कोलकाता, पुनर्मुद्रण-1421 (बंगाब्द), पृ0-140

40. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-6), पृ0-29

41. रवीन्द्र-काव्य-प्रवाह, प्रथमनाथ विशी, मित्र ओ घोष पब्लिशर्स प्रा. लि. कोलकाता, पन्द्रहवाँ संस्करण-1418 (बंगाब्द), पृ0-114

42. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-14), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती, ग्रंथन विभाग, कोलकाता-17, पुनर्मुद्रण-1421 (बंगाब्द), पृ0-141

43. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-6), श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती, ग्रंथन विभाग, कोलकाता-17, पुनर्मुद्रण-1421 (बंगाब्द), पृ0-67

44. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-14), पृ0-140

45. रवि रश्मी, चारूचन्द्र बंध्योपाध्याय, समीरण चौधरी, कॉलेज स्ट्रीट पब्लिकेशन प्रा0 लि0, कोलकाता, प्रथम संस्करण-1417 बंगाब्द, पृ0-425

46. महादेवी साहित्य, खण्ड-1, पृ0-182

47. महादेवी साहित्य, (खण्ड-1), सं0-निर्मला जैन, पृ0-262

48. महादेवी साहित्य, (खण्ड-4), सं0-निर्मला जैन, पृ0-424

49. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-6), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती, ग्रंथन विभाग, कोलकाता-17, पुनर्मुद्रण-1421 (बंगाब्द), पृ0-72

50. महादेवी साहित्य, (खण्ड-1), सं0-निर्मला जैन, पृ0-201

51. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-48, प्रधान संपादक-इन्द्रनाथ चौधुरी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ0-109

52. महादेवी साहित्य, (खण्ड-1), सं0-निर्मला जैन, पृ0-343

53. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-6), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पृ0-27

54. महादेवी साहित्य, (खण्ड-1), सं0-निर्मला जैन, पृ0-188

55. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड-6), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पृ0-13

56. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली (खण्ड-3), प्रधान सं0-इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ0-65

57. महादेवी साहित्य, (खण्ड-1), सं0-निर्मला जैन, पृ0-289